International Journal of Pedagogy, Health and Management research
IJPHMR
Volume 1 Issue 2
Dec. 2025
e - ISSN - 3107-8389
Page No. 24- 29

जनजातीय परम्परा में भारतीय दर्शन

Author- **डॉ. डॉक्टर कविता मालवीय***
Affiliation -
असहायक प्राध्यापक इतिहास
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या
स्नातकोत्तर स्वशासी
महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र .)
Contact No.-
+91 99933 33996
Email Address-
renusaxena1974.rs@gmail.com

Received on 05/12/2025
Revised on 20/12/2025
Accepted on 21/12/2025
Published on 30/12/2025

ABSTRACT

विविधरंगी भारतीय संस्कृति में जनजातियों की परंपराओं का रंग कदाचित सबसे चटख है। अपनी-अपनी संस्कृति एंव परंपराओं को जीवित रखने की उनकी लालसा भी अन्यों की अपेक्षा कहीं तीव्र है। यही कारण है कि तमाम समस्याओं एवं आभावों के बावजूद जनजातियों की उत्सवधर्मिता एंव स्वभावगत मस्ती आज भी परिलक्षित होती है। परम्परागत जीवन जीते इन जनजातिय समाज की परम्पराएं, संस्कृति, जीवनशैली विविधतापूर्ण है । आधुनिक समय में भी इनका जीवन जल, जंगल और जमीन तक सीमित हुआ है, जो आज भी आधुनिक समाज को अपनी ओर आकर्षित करता है।

International Journal of Pedagogy, Health and Management Research
(IJPHMR) e - ISSN- 31078389

जनजातियों का निवास आज भी विश्व के कई भागों में है, लेकिन विश्व के जिस भू–भाग पर इनकी जनसंख्या बहुत अधिक है, उसका नाम है भारत। यहां की कुल जनसंख्या में करीब 8 प्रतिशत लोग आदिवासी हैं । भारत में रहने वाली जनजातियों की इतनी बड़ी आबदी अभी भी बहुत हद तक अपनी आदिम चेतना, परम्परा, संस्कृति और वातावरण में मजे से जिन्दगी बसर करती हैं। आधुनिक समाज का अप्राकृतिक आर्कषण आदिवासी समाज को अपने रंग में रंगने में विफल है। जबकि गैर आदिवासी समाज (आधुनिक समाज) तथाकथित विकास और उच्च सभ्यता के नाम पर अपनी मौलिक चेतना, परम्परा संस्कृति और वातावरण से दूर हो रहे हैं । इसलिए भारत की मौलिक संस्कृति और परंपराओं की जब बात उठती है, तो इन परंपराओं के सबसे बड़े संरक्षक के रूप मे आदिवासी समाज ही सबसे सशक्त दिखता है। 3

“जनजातियाँ” जो अपने–अपने रीति–रिवाज धर्म व पहनावे के कबीले हैं जो इतिहास के चक्र–कुचक्र में घने–जंगलों व दुर्गम पहाड़ों पर जा बसने से आधुनिक सभ्यता से दूर हो गए। ये बड़े स्वाभिमानी व प्रतिरोधी स्वभाव के बाहुबली होतें हैं, उनका अपना–अपना समााजिक परिवेश अतीव सशक्त हैं। (1)

वस्तुतः जनजातीय समुदाय प्राचीनकाल से ही हमारी विशाल भारतीय संस्कृति का एक अंग रहा है और उसने सदा देश की मुख्य धारा के साथ कदम से कदम मिलाकर अपना योगदान दिया है। रामायण काल में वानर और रीछ जनजाति का श्रीराम को सहयोग, महाभारत काल में भीम और अर्जुन का जनजातियों में विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य को हिमालय क तराई क्षेत्र के जनजाति के सामन्तों की मदद से लेकर सद्य इतिहास में महाराणा प्रताप क अरावली पर्वत के भीलों का आश्रय इस बात के प्रामाणित उदाहरण हैं कि देश की प्रमुख घटनाओं के समय जनजातीय समुदाय सदा देश की मुख्य धारा

से जुड़ा रहा।[2] विशेषताओं की झलक आज भी प्रायः इसमें मिलती है। जनजाति शब्द के साथ ही हमारी कल्पना में एक ऐसी संस्कृति सामने आती है, जो वैज्ञानिक विकास से दूर वर्तमान काल की व्यवहार शैली और भौतिक जीवन से अपरिचित शांति और एकांत में प्रकृति के बीच अवस्थित है।[3] मानव जब आनंद विभोर होता है तब अपने आंतरिक सुख और उल्लास को नृत्य गीत, चित्रकला, हस्तशिल्प आदि के माध्यम से व्यक्त करना है, अपने सुरम्य परिवेश से आल्हादित मानव जब उन्मुक्त होकर विभिन्न माध्यमों से कलाभिव्यक्ति करता है तब – तब वह न केवल अंतर का सुख व्यक्त करता है वरन् उसकी जातीय लय, गतियों, ध्वनियां, रेखायें, रंग, सपने, स्मृतियां आदि – आदि भी व्यक्त होती है, वह कला के माध्यम से अपनी मूल भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों में रंग भर देता है और उनकी भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों का आकाश उसकी संस्कृति से प्रभावित होता है।

आधुनिक सभ्यता के प्रमुख प्रवाह से सदियों से कटे, सुदूर वन अंचल में बसे हुए जनजातिय समूह ने अपनी पुरातन और परंपरागत संस्कृति को अपने में संजोकर और बड़े जतन से संभाल कर सुरक्षित रखा है। उन्होंने उपलब्ध प्राकृतिक साधनों और सीमित, अवसरों का सहारा लेकर कला और संस्कृति की रचना की है। उनकी प्रतिभा लोक नृत्यों, लोक – गीतों, लोक कथाओं, हस्त–शिल्प, चित्रकला समुची जीवन शैली में उभरती है।[4]

जनजातीय, समाज में ऐसा कोई पर्व – त्यौहार, पूजा – अराधना नहीं है, जो गीत, संगीत व नृत्य के बगैर सम्पन्न होता है। प्रायः सभी अवसरों पर गीत – संगीत व नृत्य तीनों कलाओं का एक साथ प्रयोग किया जाता है। ऐसे अवसर ही नहीं के बराबर होता है जब संगीत हो रहा हो और नृत्य नहीं। जनजातीय लोक नृत्य की परंपरा

जितनी पुरानी है, उतनी ही प्राकृतिक और आध्यात्मिक आनंद प्रदान करने वाली भी है।[5] जनजातीय समुदाय प्रकृति व कृषि से जुड़े है, इसलिए बारिश के आते ही उत्सव का माहौल बन जाता है। गर्मी की उमस के बाद बारिश की बूंदों के गिरते ही खेती का काम शुरू होता है। वर्षा की प्रथम फुहारें मन को आनंदित कर देती हैं। जनजातियों के कठोर परिश्रम से जीवन के बीचों – बीच गीत – संगीत की एक अनोखी दुनिया है। हर अवसर पर उनके गीत गूंजते है, कानों में रस घोलते हैं, पांव थिरक उठते है।[6]

जिसके साथ ही यह दृश्य हमें जहां एक ओर अतीत के झरोखों से सिन्धु सभ्यतावासियों की याद दिलाते है, जो कृषि आधारित नगरीय सभ्यता थी तो वही
दूसरी और वर्तमान आधुनिक युग में भी लोगों का पर्यावरण के प्रति जागरूकता के साथ प्रकृति को सहेजने की बात व कृषक जीवन की सजीव झांकी प्रस्तुत करती है।
जहां जनजातीय परंपरा में स्वतः ही भारतीयता के दर्शन होते है या मानों भारतीय दर्शन को जनजातीय परंपराओं ने बड़ी मजबूती से सहेज कर रख रखा हो।
ऐसे में जनजातीय समाज की महत्ता भारत की राष्ट्रीय मौलिकता के संरक्षण की दृष्टि से बढ़ जाती है। यानि आदिवासी समाज और उसकी संस्कृति व परंपराओं के संरक्षण के बिना भारत की संस्कृति, यहां की मौलिक परंपराओं व वातावरण को बचा पाना मुशिकल होगा। हालांकि देश व विभिन्न राज्यों की सरकार भारतीय मौलिक संस्कृति के संकट की आशंका से सबक लेकर इस दिशा में कार्य कर रही है।
जनजातीय समुदाय स्वभाव से भोला और ईमानदार है। आधुनिक महानगरीय सभ्यता की चकाचौंध और दबाव में इनकी स्वाभाविक जनजातीय संस्कृति को प्रदूषित कर उसे नष्ट या विलुप्त होने की स्थिति में ला दिया है – समय रहते यदि हमने इस पर ध्यान नहीं दिया तो हम अपनी बहुरंगी संस्कृति के एक खूबसूरत मोहक और मादक सुगंध फैलाने वाले पक्ष को मुरझा देंगे और उसकी स्मृतियों किताबों के पन्नों में ही शेष रहेंगी

कि कभी हमारे आदिवासी ऐसे हुआ करते थे – वैसे हुआ करते थे।

सच्चाई ये है कि हमने अपनी आदिवासी संस्कृति पर कभी गहराई से विचार नहीं किया। हम उन्हें पिछड़े, अविकसित और अंध विश्वासों से पीड़ित ही मानते रहे। हमारे इस पूर्वाग्रह ने हममें यह सोच ही उत्पन्न नहीं होने दी कि आदिवासी [7]

समुदायों की संस्कृति भी इनके हजारों वर्षों के सामूहिक जीवन, अनुभव, प्रयोग, परीक्षण से उत्पन्न आचार–विचार का एकीकृत रूप है, जैसे कि दूसरी संस्कृतियां।

जनजातीय संस्कृति तथा जीवन पद्धति सही अर्थों में समतावादी तथा हर प्रकार की समानता की पक्षधर है। जितनी सहजता प्राकृतिक न्यायप्रियता तथा स्वाभाविक उन्मुक्तता इसमें मिलती है उतनी अनयत्र नहीं। हमें जनजातीय संस्कृति के इन गुणों की रक्षा एवं अनुसरण भी करना चाहिए।

जनजातीय समुदाय हमारे बहुरंगी भारतीय समाज के आकर्षक अंग है, उनकी निजता की रक्षा के अनुरूप ही उनके लिए विकास योजनायें चलाई जाना चाहिए। आधुनिकता के नाम पर इन पर इनकी परंपराओं के विरूद्ध कार्यक्रम योजना उचित नहीं।[7]

विविधरंगी भारतीय संस्कृति में जनजातियों की परंपराओं का रंग कदाचित सबसे चटख है। अपनी संस्कृति एवं परंपराओं को जीवित रखने की उनकी लालसा भी अन्यों की अपेक्षा कहीं तीव्र है। यही कारण है कि तमाम समस्याओं एवं आभावों के बावजूद जनजातियों की उत्सवधर्मिता एवं स्वभावगत मस्ती आज भी परिलक्षित होती है।[8] आधुनिक समय में भी इनका जीवन जल, जंगल और जमीन तक सिमटा हुआ है।[9] जो न केवल आज भी आधुनिक समाज को अपनी ओर आकर्षित करता है। वरन् विश्व की अन्य संस्कृतियों के सम्मुख भारतीय मौलिक संस्कृति के साथ मिल उसकी आभा को बढ़ाता है। [8]

संदर्भ ग्रंथ –

1. दैनिक समाचार पत्र।
2. कर्मवीर पत्रिका अंक दिसंबर 2000।

3. एक संक्षिप्त परिचय भारत की जनजातिय संस्कृति – उदय केसरी द्वारा वन्या संदर्भ से अंक – 10 दिसंबर, 2005 प्र.12।

4. डॉ. स्नेह चौबल द्वारा अबुझमाड़ आदिवासियों का काकसार नृत्य, म0प्र0 संदेश, प्र. 23।

5. वन्या संदर्भ से उदय केसरी द्वारा।

6. वन्या संदर्भ से सुधा तेलंग द्वारा।

7. कर्मवीर पत्रिका– दिसंबर, 2008।

8. आदिवासी संस्कृति – सप्रे संग्रहालय।

9. वन्या संदर्भ ''नए द्वार–नई पहल'' 25 जुलाई, 2006 पप्र. क्र. 12